भारत मे चमार जाति की सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक एवं व्यवसायिक गतिशीलता का सैद्वान्तिक परिप्रेक्ष्य

स्वराज सिहँ, शोधछात्र,

समाजशास्त्र विभाग,डी0ए0वी0(पी0जी0)कालेज, देहरादून

किसी भी देश का विकास एवे प्रगति मे विभिन्न धर्मो एंव जातियो की महत्वपूर्ण भूमिका हाती है देश का भविष्य उसमे निवास करने वाले धर्मो एवं जातियो के लोगो का परिवारिक एवं आर्थिक विकास निहित है उसमे निवास करने वाले धर्मो एवं जातियो के लोगो का समुचित परिवारिक एवं आर्थिक विकास करके ही वास्तविक अर्थो मे विकास की संकल्पनाओं को पूरा किया जा सकता है धर्मो एवं जातियो के विकास मे सामाजिक परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

भारतीय समाज केवल चार वर्णों में ही विभाजित नहीं है बल्कि व्यावहारिक रूप में हमारी सामाजिक संरचना का निर्माण उन हजारों जातियों एवं उप जातियों से हुआ है। जो "जन्म" के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करती हैं। यही कारण है कि भारतीय समाज को एक जातिगत समाज कहकर परिभाषित किया जाता है। वास्तविकता यह है कि भारतीय सामाजिक संगठन को स्थाई बनाने और व्यक्ति की परिस्थिति तथा भूमिका को सुनिश्चित करने के लिए हमारा अतीत तरह–तरह के परीक्षणों से भरा है। परीक्षण के तौर पर बनायी गयी व्यवस्थाओं में से कुछ ने बहुत स्थाई रूप ग्रहण कर लिया जबकि अनेक व्यवस्थायें केवल सिद्धान्त रूप में ही रहकर समाप्त हो गयी। इन सभी व्यवस्थाओं में जाति व्यवस्था ने हमारे समाज को जितने अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से प्रभावित किया है। उसकी तुलना किसी भी दूसरी व्यवस्था से नहीं की जा सकती है।

भारतीय समाज की सामाजिक संरचना सम्बद्ध संस्थाओं एवं समयुगीन सम्प्रदायों का एक संगठन है। प्राचीन वर्ण– धर्म संस्था के समन्वीयकृत, सामाजस्यीकृत प्रक्रिया के रूप में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक क्रियाविधि आधार प्रतिमानों तथा मानव भावनाओं के गुणात्मक एवं न्यायात्मक स्तर पर जातीय व्यवस्था ने भारतीय समाज को बहुत प्रभावित किया है। सामाजिक संरचना के रूप में जाति एक सामाजिक संगठन तथा चिरकालिक सांस्कृतिक घटना है। हिन्दू समाज जातियों के अनेक समूहों में विभक्त हुआ है। जिनका मान प्रतिष्ठान, सामाजिक परिस्थिति तथा पद के स्तर की भिन्नता है। उसकी विलक्षणता एवं सर्वव्यापकता के आधार पर सर्वकालिक सर्वदेशीय विशेषताओं में क्रमबद्ध समाज का अलग–अलग बटवारा, भोजन, सहवास तथा सामाजिक व्यवहार का निषेध, व्यवसाय चुनने का अभाव तथा चमार जाति की निर्योग्यता अन्तःविवाह आदि प्रमुख हैं। (घुरिये– 1959:2–24)

ऐतिहासिक सर्वेक्षण से परिलक्षित होता है कि भारतीय समाज में अनेक प्रकार की सामाजिक आर्थिक भिन्नतायें तथा असमानतायें प्राचीन काल से ही निहित रही हैं। इनमें सर्वाधिक निम्नस्तरीय तथा विचारशून्य असमानतायें जाति व्यवस्था पर आधारित है। जाति को एक ऐसे अर्न्तविवाही बन्द समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसकी मुख्य विशेषतायें जन्म द्वारा सदस्यता तथा अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्धारण अर्न्तजातीय खान–पान पर प्रतिबन्ध सामाजिक संस्तरण निश्चित संस्कृति एवं सामाजिक प्रदत्त पद, ऊँच–नीच पर आधारित दूसरी जातियों की सामाजिक दूरी एवं निकटता का अभाव तथा पद एवं स्थति का प्रावधान से हम शक्ति, संरचना और शिक्षा का निर्धारण करते हैं। (अटल, 1968:1–20)

समाजिक असमानता के निश्चित नियम के आधार पर सामाजिक स्तरीकरण को अथवा अनुवांशिक जातिगत संस्तरण पद्धति का विकास हुआ। जाति श्रेष्ठता एवं हीनता की धारणाओं पर आधारित आर्दशात्मक एवं शून्ययात्मक सम्बन्धों के पदों की व्यवस्था हुई। जाति में निश्चित श्रेष्ठता तथा हीनता की अवधारणाओं के द्वारा भारतीय समाज में कुछ ऐसे पूर्वाग्रहों, जैसे– (मूल्य एवं व्यवहार प्रतिमान उत्पन्न हुए जिनमें समाज में अनेक प्रकार की सामाजिक असमानताओं एवं निर्योग्यताओं का जन्म हुआ। और जिसके फलस्वरूप समाज में अनेक वर्गों को निर्धनता में भी निम्न स्तर पर जीवन व्यतीत करना पड़ा। इनमें सर्वाधिक अमानवीय सामाजिक एवं अनैतिक असमानतायें तथा निर्योग्यतायें अस्पृश्यता के रूप में निहित थी । अस्पृश्यता जातियों जिन्हें अनुसूचित जातियों के नाम से सम्बोधित किया गया। को अपवित्र एवं दरिद्र माना जाता था। और उनकी सामाजिक श्रृंखला में सबसे निम्न स्थान था। उच्च हिन्दू जातियों की

पवित्रता तथा अपवित्रता के अन्धविश्वास के कारण इन्हें समाज में बहिष्कृत किया गया। जिसके फलस्वरूप इन्हें अमानवीय तथा शोषणपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ा। सांस्कृतिक स्तर पर इन्हें छूने, यहाँ तक कि इनकी छाया को भी अशुभ तथा मलिन माना जाता था।

भारतीय सामाजिक संरचना में जातीय संस्था की निकृष्ट्तम स्तरीकृत अभिव्यक्तियाँ ही अनुसूचित जातियाँ हैं। तद्सन्दर्भ में शूद्र है। ये जाति के हिन्दू सिद्वान्तानुसार चार प्रकार के वर्ण धर्माबद्व समाज की पाँचवी श्रेणी है–(ध्रुर्वे,1975–103)

प्राचीन धर्मग्रन्थों में इन्हें चाण्डाल, अन्तयज,श्वपाचय, पतित आदि वाचों से सम्बोधित किया जाता था ये सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक दृष्टि से दास, दलित, अपवित्र तथा अस्पृश्य, अर्दशनीय हिन्दू जातियाँ थी (मजूमदार 1958–226)

जाति प्रथा जब अपने यौवन अवस्था में थी तब इस पंचम वर्ण की दशा कई प्रकार की दासता से बुरी थी। दास केवल एक व्यक्ति के अधीन होता था। लेकिन अछूतों के परिवारों पर तो पूरे समाज की दासता का भार था (पणिक्कर–1956–92)।

वह शूद्र व्यक्ति अपने स्वामी से मुक्ति पा चुका हो तब भी वह दासता से मुक्त नहीं हो सकता था। क्योंकि वह उनके जन्म के साथ ही लगी हुई है। (देसाई–1966–263)

परन्तु चाण्डालों और अस्पृश्यों का निवास गाँव के बाहर होगा और वे अपात्र होंगे। इन्हें न तो उच्च जातियों द्वारा सेवायें प्राप्त करने की अनुमति थी न ही वे उन जातियों जैसे– धोबी, नाई, इत्यादि जो कि उच्च जातियों की सेवायें करती थी । वे सार्वजनिक सुविधायें जैसे कुँओं, सड़कों तथा जल मार्गों का प्रयोग नहीं कर सकते थे। और न ही अन्य जातियों के मन्दिरों तथा शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश कर सकते थे। प्रायः इन्हें धर्मशालाओं इत्यादि में जाने तथा मूल्यवान वस्त्र, आभूषण एवं बर्तनों के प्रयोग से भी रोका जाता था। उच्च जातियों के लोग उनसे बात–चीत करने, उन्हें उठने–बैठने के योग्य भी नहीं समझते थे। उनके अति निम्नस्तर का आभास इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्हें प्रायः निवास शमशान घाटों के निकट एवं गाँव के बाहर अन्य जातियों से पृथक निवास दिया जाता था। इनसे सम्बन्धित बातें निम्न तथ्यों में स्पष्ट हैं।

"ब्राह्मण की उत्पत्ति देवताओं से और शूद्र की उत्पत्ति असुरों से हुई है" (श्रैत्तिरेय ब्राह्मण–1,3,6,7)

"शूद्र शून्य से पैदा होता है" (श्रैत्तिरेय ब्राह्मण–3,2,8,9)

चौथा वर्ण शूद्र एक जाति है (शूद्र चतुर्थो वर्ण एक जाति स्तरस्माणि–गौतम स्मृति 1/31)

"चौथा वर्ण शूद्र एवं संस्कारों से हीन है उसका एक मात्र का उद्देश्य द्विज जातियों की सेवा करना है" (विष्णुस्मृति 1/15)

"शूद्र को धन संचय कदापि नहीं करना चाहिए यद्यपि वह ऐसा करने में समर्थ भी हो तो भी नहीं कर सकता क्योंकि धन संचय करके रखने वाला शूद्र ब्राह्मणों को पीड़ा देता है" (मैक्समूलर, पृ0सं0 129)

महाभारत मे ऐसा कहा गया है कि शूद्र मुक्त या अबाधित रूप से सम्पत्ति रख सकता है। यदि शूद्र का स्वामी संकट में पड़ गया है तो शूद्र को अपने स्वामी के सर्वथा अधीन होगा की वह जैसा चाहे उसका उपयोग करें। (गौतम सूत्र, पृ0 194–197, उद्वत, धुर्वे, 1975–54)

"एक शूद्र ऐसा कोई अपराध नहीं करेगा कि जिससे उसकी जाति चली जायें और पवित्र धर्म ग्रन्थों का पाठ नहीं सुनेगा, उसे पवित्र धर्म के पालन का कोई हक नहीं है" (मैक्समूलर, पृ0 226)

"उसके वस्त्र मृतकों की पोशाक होगें, वें टूटी थाली में भोजन करेगें काला लोहा ही उनका गहना होगाा और वें आवश्यक रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमते–फिरते रहगें" (मैक्समूलर, पृ0 252)

"शूद्र को उपनयन संस्कार, वेदाध्ययन तथा यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करने का अधिकार नही है" (गौतम सूत्र, पृ0 1–2)

"ब्राह्मण शास्त्रकारों ने शूद्रों को बहुत से कामों से प्रवचित किया है और उनके लिये भंयकर प्रतिबधं तथा कठिन प्रायश्चित निर्धारित किये हैं, यथा– जिस गाय का दूध अग्निहोत्री के काम" में लाया जाए उसे शूद्र ना छूए" (मैत्रायणी –संहिता, 4/3/1)

"यज्ञ करते समय शूद्र से बातें नही करनी चाहिये, न ही शूद्र की उपस्थिति में यज्ञ करना चाहिये" (पंचविशं–ब्राह्मण–6/1/11)

"शूद्र केवल दूसरों का सेवक है, इसके अलावा उसको कोई अधिकार नहीं है" एतरेय–ब्राह्मण,7/29/4)। "शूद्र को सोमरस पिलाना वर्जित है" (काठकसंहिता,11/10)। "यदि कोई द्विज शूद्र स्त्री के साथ व्यभिचार करें तो देश से निकाला जाये, परन्तु यदि शूद्र किसी स्त्री से व्यभिचार करें तो प्राण दण्ड का भागी हो" (आपस्तम्ब धर्मसूत्र,पृ0 10,सूत्र 8–9)। "यदि शूद्र किसी आर्य स्त्री से सम्भोग करता है तो उसकी जनेन्द्रिय को काट दिया जाये और उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली जाये, और यदि उस स्त्री का कोई स्वामी न हो तो शूद्र को उपर्युक्त दण्ड के पश्चात् प्राण दण्ड दिया जाये" (गौतम धर्मसूत्र,12/16)।

"शूद्रों का स्थान वर्ण व्यवस्था में अन्तिम रखा गया" (अम्बेडकर 1948 पृ0सं0 38)

"शूद्र अपवित्र है, अतएव उसके सम्मुख अथवा उसके सुनने में कोई वैदिक कार्य नहीं हो सकता (वही)। यदि वह किसी द्विज का नाम व जाति का उल्लेख तिरस्कार के साथ करता है तो उसके मुख में 10 अंगुल लम्बी जलती लोहे की कील घुसा दी जायेगी"। (देसाई–1966–268)

"एक निम्न वर्ण का मनुष्य जो उच्च वर्ग के मनुष्य के स्थान पर अपने पद को स्थापित करने का प्रयास करता है, उसके कूल्हे पर तपते लोहे से दाग दिया जायेगा और उसे बनवास दे दिया जायेगा अथवा राजा उसके नितम्ब पर गहरा घाव करने की व्यवस्था करेगा" (देसाई–1966 पृ0सं0 26–68)

"शूद्र कोई जायदाद या सम्पत्ति नहीं रख सकता ब्राह्मण जब चाहे शूद्र की सब सम्पत्ति का हरण कर सकता है। (देसाई–1966 पृसं0 38)

"शूद्र को कोई राजपद नहीं प्राप्त हो सकता (देसाई)

धर्मसूत्र लेखकों का यह कहना है कि चण्डाल मिश्रित सम्बन्धों की अत्यन्त प्रतिकूल श्रेणी मानी गयी है। ब्राह्मण स्त्री तथा शूद्र पुरूष से जो सन्तान उत्पन्न होगी। (धूवे 1975–196)

उन्हें न केवल गाँव से ही अलग कर दिया गया था अपितु उनके लिए ऐसे कर्तव्यों का निर्धारण कर दिया गया जिससे यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि वे मानवता के अक्षम उदाहरण थे। (देसाई)

संक्षेप में प्राचीन धर्मशास्त्र ग्रन्थों में कानून लोकतंत्र की दृष्टि से सबके लिए समान अधार पर आश्रित न होकर जातीय दृष्टिकोण पर आश्रित थे। परिमाणतः शूद्र की स्थति नगण्य और उसका जीवन निर्रथक प्रतीत होता है। (पटवर्धन 1973 पृ0सं0 434)

बी0आर0 अम्बेडकर के कथन से भी निर्योग्यताओं की पुष्टि होती है। उर्पयुक्त प्राचीन सन्दर्भ ग्रन्थीय अभिव्यिक्तियों एवं विभिन्न विद्धानों के ऐतिहासिक अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि सांस्कारिक सामाजिक संरचना का सम्बन्धित संकुल स्वरूप सामाजिक असमानता, जन्मता संस्तरण एवं कतिपय जातीय समुदायों के विशेषाधिकारों से ग्रसित रखा है। इन असमानताओं तथा निर्योग्यताओं से भारतीय समाज में सामाजिक समायोजन तथा अन्तःसामूहिक तथा अर्न्तजातीय अन्तःक्रियाओं सम्बन्धी अनेक प्रकार की समस्यायें उत्पन्न हुई हैं। इन वर्गों के आर्थिक साधनों की उपयोगिता तथा गतिशीलता पर प्रतिबन्धों ने देश के सामाजिक आर्थिक विकास में अनेक प्रकार की बाधायें उत्पन्न की हैं। इस व्यवस्था द्वारा भारतीय

समाज संरचना में एक प्रकार की ऐसी व्यवस्था उत्पन्न हुई कि जिसमें पूर्ण रूप से अमानवीय शोषणपूर्ण व्यवस्था कहा जा सकता है। यही नहीं इन असमानताओं तथा निर्योग्यताओं के कारण समाज में सामाजिक पिछड़ापन, निर्धनता, आर्थिक विषमता तथा अशिक्षा को बढ़ावा मिला और प्रौधोगीकरण एवं औधोगीकरण में बाधायें आयी।

इन अर्तकसंगत तथा असामाजिक झूठे पूर्वाग्रहों तथा मूल्यों पर आधारित प्रदत्त असमानताओं के विरूद्ध समय–समय पर अनेक प्रकार के आन्दोलन हुए हैं। प्राचीन भारत में बुद्ध तथा रविदास के प्रचार इन असमानताओं के प्रति आन्दोलन के रूप में माने जा सकते हैं। जिन्होंने ब्राह्मणों की सत्ता एवं प्रभुत्व को नकारा।

मध्यकालीन युग में गुरू नानक, कबीर तथा रामानुज इत्यादि सन्तों ने इन निर्योग्यताओं के प्रति आवाज उठाई। पिछली शताब्दी में इनके विरूद्ध चलाये गये प्रमुख आन्दोलनों में आर्यसमाज राम कृष्ण मिशन, ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज तथा अन्य समाजसुधार आन्दोलन महत्वपूर्ण थे। इसी प्रकार स्वतंत्रता से पहले निर्योग्यताओं के समापन हेतु राज्यस्तर पर भी प्रयास किये गये जिनमें दा बोम्बे हरिजन रिमूवल ऐक्ट 1947, मद्रास रिमूवल आफ सिविल रिहेब्लिटीज एक्ट 1938, दा बाम्बे हरिजन रिमूवल आफ सिविल डिसेब्लिटीज एक्ट 1946, द रिमूवल आफ सिविल डिसेब्लिटीज एक्ट 1943 (मैसूर), द यूनाईटेड प्रोबिनिसेज आफ रिमूवल डिसेब्लिटीज एक्ट 1947 (बिहार), हरिजन रिमूवल आफ सिविल डिसेब्लिटीज एक्ट 1946 उल्लेखनीय है। परन्तु 20 वीं शताब्दी में सर्वाधिक महत्वपूर्ण आन्दोलन महात्मा गाँधी द्वारा प्रारम्भ किये गये। यद्यपि इन आन्दोलनों के परिणामस्वरूप समाज में बौद्धिक वर्ग तथा राजनैतिक नेतृत्वों में यह जागरुकता उत्पन्न हुई कि भारतीय समाज के उत्थान के लिए इस प्रकार के जातीय असमानताओं का समापन आवश्यक है। परन्तु यह सभी प्रयास अपनी प्रकृति तथा अपनी अक्षमता में सीमित थे। और इन्हें किसी भी प्रकार का वैधारित संरक्षण प्राप्त नहीं था।

अस्पृश्यता तथा इससे उत्पन्न होने वाली असमानताओं तथा निर्योग्यताओं पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण आघात स्वतंत्रता के पश्चात् नये संविधान के लागू होने पर हुआ भारतीय संविधान में जातीय भेदभाव तथा भिन्नताओं को अवैध ही घोषित नहीं किया गया अपितु इन्हें किसी भी रूप में माने जाने को दण्डीय घोषित किया गया। यही नहीं अस्पृश्य जातियों तथा उसी प्रकार के अन्य पिछड़े वर्गों को धारा 341 के अर्न्तगत अनुसूचित जातियों के रूप में परिभाषित कर संविधान में उनके सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक तथा राजनैतिक हितों की सुविधा एवं विकास हेतु इन्हें विशेष सुविधायें प्रदान की गयी इन सुविधाओं के परिणामस्वरूप इनके विकास पर प्रभाव सम्बन्धी बातों पर विद्वानों के भिन्न–2 मत हैं।

कुछ के मत इस प्रकार हैं कि सरकारी सुविधाओं से इन जातियों के लोगों को पर्याप्त लाभ हुए हैं। और कुछ विद्वानों का मानना है इन जातियों में वास्तविक स्तर पर निर्धन एवं शोषित वर्ग के लोगों के नाम पर दी गयी सुविधाओं को केवल उनमें से सक्षम एवं सम्पन्न वर्ग ही लाभान्वित हुए हैं। (खान–1980)

परन्तु यह सर्वमान्य है और अनुभव सिद्ध स्तर पर देखने को मिलता है कि सरकारी सुविधाओं द्वारा इन जातियों की सामाजिक, आर्थिक दशाओं एवं सांस्कृतिक सहभागिता में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़े हैं, अनुसूचित जातियों का उत्थान भारत में सामाजिक न्याय पर आधारित समतावादी, प्रजातांत्रिक व्यवस्था के लिए यह आवश्यक नहीं अपितु यह देश की राजनैतिक व्यवस्था की स्थिरता, निरन्तरता के लिए भी अति आवश्यक है। क्योंकि अनुसूचित जाति की संख्या कुल जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण अंग है इसलिए इनका कल्याण देश की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक है। प्रस्तुत सन्दर्भ में कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि अनुसूचित जातियों में भी सरकार द्वारा दी गयी सुविधा के बाद जनसंख्यात्मक तथा सामाजिक–आर्थिक दृष्टिकोण से प्रमुख जातियों के लोगों को ही प्राप्त हुए इनके अनुसार अनुसूचित जातियों में वे जातियां जो या तो अल्पसंख्यक हैं या सामाजिक आर्थिक दृष्टिकोण से अत्यधिक पिछड़ी हुई है। जिनका शक्ति एवं सत्ता में राजनैतिक प्रभुत्व नहीं है। उन लोगों को इन सुविधाओं के लाभ लगभग नगण्य हैं। परन्तु वास्तविकता का पता लगाने के लिए समाज वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि अनुसूचित जातियों में परिणामस्वरूप से अत्यधिक प्रचुर एवं स्थानीय रूप से सर्वाधिक सुविस्तृत जाति समूह के सामाजिक आर्थिक दशाओं एवं उसमें गतिशीलता के उभरते प्रतिमानों का एक अनुभाविक अन्वेषण किया जाये।

भारतीय समाज का अध्ययनः– भारतीय समाज में परिवर्तन के सन्दर्भ में अनेक प्रकार के अध्ययन हुए हैं। इन समुदायों के संचरनात्मक विशेषता तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों के स्पष्टीकरण के लिए सम्बन्धित अध्ययनों का विश्लेषण आवश्यक है। इससे न केवल भारतीय समुदाय में स्थानीय एवं वृहद राष्ट्रीय संस्कृति में होने वाली अन्तःक्रियाओं का बोध होगा अपितु परिवर्तन की दिशाओं का भी अभिज्ञान प्राप्त होगा इन अध्ययनों को हम निम्न भागों में बांट सकते हैं।

1– भारतीय परिवार के अध्ययन– प्रथम श्रेणी में इन अध्ययनों को लिया जा सकता है। जो भारतीय समाज में परिवार के आकार, स्वरूप तथा उनके बदलते रूप की विवेचना करते हैं। जो भारतीय परिवारों के ग्रामीण एवं शहरी परिवारों का अध्ययन करते हैं। इन अध्यनों में दुबे (1955), कपाड़िया (1956), रे (1956), लुईस (1958), मारीसन (1959), निमकाफ (1959), कुलकर्णी (1960), बसु (1962), गुडे (1963), ज्योतिमय शर्मा (1964), मलहोत्रा एवं सैन (1965), गोरे (1968), आन्द्रेवित्ते (1964), योगेन्द्र सिंह (1970), मदन (1962) आदि प्रमुख हैं। इन अध्ययनों के अनुसार भारतीय ग्रामीणी एवं शहरी समाज में परिवार के आकार स्वरूप से सम्बन्धित निष्कर्ष निम्नलिखित प्रकार से हैं।

प्रथम– सम्पूर्ण भारत में संयुक्त परिवार की बहुलता कम हो रही है। परिवार का आकार छोटा हो रहा है। दूसरे शब्दों में एकाकी परिवार एवं लघु परिवारों की संख्या में वृद्धि हो रही है। (कोलिन्डा–1967)

द्वितीय– ग्रामीण समुदाय की अपेक्षा नगरीय समुदाय में एकाकी परिवार की बहुलता है। और एकाकीकरण की प्रक्रिया अधिक है। (कपाड़िया–1956, कुलकर्णी–1960, गुडे–1963)

तृतीय– यद्यपि यह प्रत्येक स्थान पर सत्य नहीं है परन्तु अधिकांशतः निम्न जातियों तथा निम्न व्यावसायिक समूहों की अपेक्षा उच्च जातियों तथा उच्च व्यावसायिक समूहों में संयुक्त परिवार का बहुल्य है। और निम्न जातियां तथा निम्न व्यावसायिक समूहों में एकाकीकरण की प्रक्रिया अधिक है। (कपाड़िया–1956, लुईस–1958: 17–18, बसु–1962:89 योगेन्द्र सिंह– 1970:254)

चतुर्थ– उच्च आर्थिक स्थति भूमिस्वामित्व और आर्थिक श्रोतों वाले वर्गों में संयुक्त परिवार का बाहुल्य होता है। (दुबे–1977, मारीशन–1959, ड्राईवर–1959, वसु–1962, आन्द्रवित्ते–1964) और शिक्षा भारतीय परिवार में एकाकीकरण उत्पन्न करती है। (मारीशन–1959, ड्राईवर–1959)

जातीय संरचना एवं उनके परिवर्तनों के अध्ययनः– द्वितीय वर्ग में इन अध्ययनों को रखा जा सकता है। जो भारतीय समाज में जातीय संरचना तथा व्यवस्था का विश्लेषण करते हैं। इनमें प्रमुख अध्ययन डेविस 1951, श्रीनिवास 1962, वेली–1958, घुरिये–1961 गुडे 1963 आन्द्रेवित्ते 1966, ईश्वरन 1966, देसाई 1969, राव 1970, वो0पी0गामा 1972 है।) इन अध्ययनों में भारतीय समुदायों के जातिगत संरचना तथा विभिन्न जातियों में पारस्परिक सम्बन्धों एवं व्यवहारों तथा उनकी संरचनात्मक विशेषताओं (जैसे कि खण्डात्मक विभाजन, सामाजिक संस्तरण, आर्थिक अन्तःनिर्भरता ,जजमानी निर्भरता तथा सामाजिक सहवास पर प्रतिबन्धों और धार्मिक निर्योग्यताओं तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों को प्रतिविभाजित किया गया है।) प्रायः इस प्रकार के अध्ययनों से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

प्रथम– शक्ति एवं सत्ता संरचना में उच्च जातियों का प्रभाव कम हो रहा है। और इसके स्थान पर बहुसंख्यक जातियों का प्रभुत्व बढ़ रहा है। (डेविस 1951, श्रीनिवास 1955, घुरिये 1961, गुडे 1963, मोरे 1965, ईश्वरन 1966, देसाई 1969, कोहेन 1969)

जातीय पंचायत के महत्व एवं प्रकार्य में स्थिरता आयी है। और जमींदारी व्यवस्था उन्मूलन के कारण उच्च जातियों की श्रेष्ठता कम हो रही है। (श्रीनिवास 1955 बेली 1958 इनस्टीन 1962, आन्द्रेवित्ते 1966, राव 1970, वो0पी0गामा 1972)

द्वितीय– संस्कृतिक तथा पाश्चयतीकरण की प्रक्रिया द्वारा निम्न जातियों के लोगों के पद और स्थति में वृद्धि हो रही है। और नवीन औधोगिक तथा नगरीय व्यवसायों को ग्रहण करने के कारण उनकी आर्थिक स्थति में परिवर्तन हो रहा है। और प्रायः में परम्परागत शोषणपूर्ण व्यवस्था से मुक्त हो रहे हैं।

3– आर्थिक एवं व्यावसायिक परिवर्तनों में अध्ययन :– तृतीय प्रकार के ये वे अध्ययन हैं जिनमें भारतीय समाज में होने वाले आर्थिक एवं व्यवसायिक परिवर्तनों को दर्शाया गया है। इन अध्ययनों के अनुसार आर्थिक एवं व्यवसायिक स्तरपर जो परिवर्तन हुए हैं, निम्नलिखित प्रकार से हैं।

प्रथम :– व्यवसायिक जीवन में परिवर्तन की दिशा कृषि व्यवसायों से गैर व्यवसायों की ओर है तथा उच्च जातियों में अधिकतर व्यवसाय और आर्थिक गतिशीलता समतल प्रकृति की है। जैसा कि ब्राह्मण तथा अन्य जातियों के लोग सरकारी एवं गैर सरकारी नौकरियों तथा वाणिज्य, औद्योगिक नौकरियों तथा कृषि इत्यादि व्यवसायों को अपना रहे हैं। (लुईस, 1966:78) रे (1956:7) ईश्वरन (1966:96) दास (966:16) रेड्डी (1966:167) आन्द्रवित्ते (1969:64) शर्मा (1971)।

परन्तु विद्वानों के अनुसार अनुसूचित जातियाँ अथवा निम्न जातियों के लोग मजदूरी, कृषि मजदूरी तथा अन्य प्रकार की नगरीय सेवाओं जैसे :– रिक्शा चालक राजगिरी को अपनाये हैं। (लुईस 1958:68) वेली (1958:149) रेड्डी 1968 रथ 1968 राय (1970:90)

द्वितीय :– शिल्पकार जातियों के लोग केवल गाँव में सेवार्थ न देकर नगरों की आर्थिक व्यवसायिक संरचना की मांगों की पूर्ति हेतु कार्य करना प्रारम्भ किये हैं तथा उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। जैसा कि शर्मा (1955), वेली (1958) इवस्टीन (1962) माथुर (1964) रेड्डी (1968) रथ (1968) राय (1970) इत्यादि के अध्ययनों के अनुसार चमार, कुम्हार, जुलाहा, लोहार इत्यादि जाति के लोगों ने मजदूरी, कृषि मजदूरी तथा फैक्ट्री में नौकरी करना प्रारम्भ कर दिया है।

तृतीय :– अनुसूचित अथवा अस्पृश्यता जातियों के लोगों ने अपने परम्परागत मलीन व्यवसायों को छोड़कर अन्य व्यवसाय अपना रहे हैं। सहाय 1967 के अनुसार चमारों में मुर्गी पालन, श्रीवास्तव 1973 के अनुसार रायगर जातियों में लोगों ने नौकरी या मजदूरी, औसूजा 1962 के अनुसार महार जाति के लोगों ने मजदूरी छोड़कर खेती, गंगोर्दे 1966 के अनुसार चमार जाति के लोगों ने चमड़े का कार्य छोड़कर नगर में जाकर फैक्ट्री में नौकरी जैसे कार्य अपनाये हैं।

चतुर्थ :– प्रकार के अध्ययनों से यह प्रदर्शित होता कि भारतीय समाज में निम्न तथा उच्च जातियों में निम्न आर्थिक स्थिति वाले लोग भी अपना व्यवसाय छोड़कर नगरों में वाणिज्य, लघु सेवाएं तथा औद्योगिक नौकरियाँ ग्रहण कर रहे थे। (ड्राइवर 1962:26, कुलकर्णी 1969:130)

पंचम :– कृषि साधनों में विकास के कारण उत्पादन और उपयोगों के अनुसार कृषि उत्पादन की प्रकृति ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति मांग न रहकर नगरीय व्यवस्था का एक अंग बन रही है और नगरीय सम्पत्ति के कारण ग्रामीण उपयोग का रूप परिवर्तन हो गया है। (दुबे–1955:220) वेली 1958:238 लुईस 1958:103 ईश्वरन 1966:190 राम (1970:65), इससे यह भी निहित होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का निरन्तर मौद्रिकरण हो रहा है और परिवर्तित कर रहा है। (नाथ 1965:188–89) ईश्वरन (1960:90) राव (1970:65), कुछ अध्ययनों से यह भी परिभाषित होता है कि कृषि की यान्त्रीकरण के कारण परम्परागत श्रमशक्ति पर निर्भरता कम हुई है और निम्न जातियों का शोषणपूर्ण स्थिति में परिवर्तन हुए हैं। (ओम – 1961:138) अवस्टीन 1962:52–90। ईश्वरन 1966:191 गेटटी 1969:539, सिंह 1970:266 मुखर्जी 1971:232–33

अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित अध्ययन :– समाजशास्त्रियों को अनुसूचित जातियों के अध्ययन में विशेष रूचि रही है इस सन्दर्भ में वे जो अध्ययन हुए हैं उन्हें मुख्य रूप से चार भागों में बांटा जा सकता है।

प्रथम श्रेणी में वे अध्ययन आते हैं जो मुख्यतः समाज में परिवर्तन तथा अर्न्तजातीय परिवर्तनों का अध्ययन करते हैं परन्तु थोड़ा बहुत अनुसूचित जातियों की बदलती हुई परिस्थितियों पर प्रकाश डालते ही प्रायः इन अध्ययनों में यह दर्शाने की चेष्टा की गई है कि विभिन्न बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार अनुसूचित जातियों की दशाओं में किस प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं इस सन्दर्भ में– दत्त (1931) वेली–1960, श्रीनिवास–1962, इरसटिन 1962, कुमार 1965, अग्रवाल 1971 श्रीनिवास 1972 इत्यादि विद्वानों के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं।

द्वितीय श्रेणी में उन अध्ययनों को रखा जा सकता है कि अस्पृश्य जातियों से सम्बन्धित संरचनात्मक तथा संगठनात्मक विशेषताओं की विवेचना की गई है।

इस सन्दर्भ में– केटकर–1929, मेहता–1972, अम्बेडकर 1939, अम्बेडकर 1946, सिंह 1947 तिवारी 1963 इत्यादि विद्वानों के अध्ययन प्रमुख माने जा सकते हैं।

तृतीय श्रेणी में विभिन्न आयोगों तथा उन अध्ययनों को लिया जा सकता है जो सरकार द्वारा किये गये हैं। इस सन्दर्भ में रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी ऑन अन्स्टेविलिटी एण्ड इकनोमोक्सि एण्ड एजुकेशन डेवलेपमेन्ट ऑफ शेड्यूल कास्ट 1966, मिनिस्ट्री ऑफ अफेयर 1967, एन0सी0आर0टी0 1969, रिपोर्ट ऑफ दा कमिशनर फॉर शेड्यूल कास्ट एण्ड शेड्यूल ट्राइब (1969–70), दुबे 1974, गोयल 1974 के अध्ययन प्रमुख हैं। इन अध्ययनों से अनुसूचित जातियों के लोगों का सरकार द्वारा शैक्षणिक व्यवसायिक दशाओं के मूल्यांकन किये गये हैं। इन अध्ययनों से निम्न तथ्य स्पष्ट होते हैं।

1974 के अध्ययन प्रमुख थे। इन अध्ययनों में अनुसचित जातियो के लोगों को संस्कार द्वारा प्राप्त शैक्षिक व्यवसायिक दशाओं के मूल्यांकन किये गये हैं। इन अध्ययनों में निम्न तथ्य स्पष्ट होते हैं :–

1. सरकार द्वारा प्राप्त सुविधाओं के परिणामस्वरूप अनुसचित जातियों को सामाजिक, शैक्षिक तथा आर्थिक दशाओं में सुधार हुए हैं, लेकिन इन सुविधाओं का उन्हें पूर्ण लाभ नहीं मिला।
2. इन सुविधाओ का लाभ उसमें कुछ प्रभुत्वमुक्त जातियों तथा आर्थिक दृष्टिकोण से मजबूत लोगों में ही मिल पायी है। वास्तविक रूप से गरीब तथा अल्पसंख्यक अनुसूचित जातियों को नहीं मिल पाया है।
3. इन सुविधाओं को उन तक न पहुँचने के मुख्य कारण प्रशासन व्यवस्था को उच्च जातियों के हाथों में होना, उनके प्रति उदासीनता तथा उनकी स्वयं में जागरुकता का अभाव है।

चतुर्थ श्रेणी में उन सभी अनुभव सिद्ध अध्ययनों को रखा जा सकता है जिनमें अनुसूचित जातियों की बदलती हुई सामाजिक दशाओं तथा सरकार द्वारा दी गई सुविधाओं के प्रभावों की विवेचना की गई है। इस पक्ष पर अप्पा, मुखर्जी (1951), केरवर (1952), कोवेन (1959), शर्मा (1972), सिंह (1969), ओमेन (1967), चटर्जी (1971), सिंह (1967), मेटरस (1984), सबरवाल (1972), पटवर्धन (1973), रामास्वामी (1974), राव (1974), मुंताबे (1973), शाह (1982), सच्चिदानन्द (1977), अग्रवाल (1971), भाट (1977), अहमद (1978), काम्बले (1981) तथा वान (1980) इत्यादि विद्वानों के अध्ययन प्रमुख थे। इन अध्ययनों में अनुसूचित जातियों की दशाओं में परिवर्तन सम्बन्धी जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, वे निम्नलिखित हैं :–

1. शिक्षा और सरकारी नौकरी के कारण इनकी स्थिति में बहुत परिवर्तन हुआ है तथापि लेकिन अभी भी अनेक समस्याएं बनी हुई हैं।
2. परम्परागत सामाजिक स्तरीकरण में यद्यपि हरिजन अभिजात वर्ग अपने नवीन अर्जित स्थिति पर बल देने लगा है परन्तु उनकी नवीन स्थिति में न तो परम्परागत संस्करण में उनके स्थान की उच्च क्रिया है और न ही उनकी राजनैतिक सहभागिता को उन्नत किया है। संरक्षक की व्यवस्था में हरिजन समुदाय और राष्ट्रीय पंजीकरण की मध्य दूरी अधिक बढ़ा दी है।
3. नवीन परिवर्तनों के कारण हरिजनों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हुआ है तथा वे सामाजिक संस्तरण में ऊपर उठ रहे हैं, यद्यपि कानून द्वारा अस्पृश्यता उन्मूलन के पश्चात् अनुसूचित जातियों की दशाओं में सुधार हुए हैं, परन्तु वे अभी भी अनेक प्रकार के सामाजिक और आर्थिक निर्योग्यताओं से ग्रसित हैं।
4. जाति राजनीति के एक शक्तिशाली अनुभव के रूप में विकसित हो रही है। आरक्षण की नीति में जहाँ एक ओर निम्न जातियों के कुछ सदस्यों को लाभ पहुँचाया है वहीं अनुसूचित जातियों को निम्न स्थिति में भी परिवर्तन हुआ है और आरक्षण का लाभ भी अनुसूचित जातियों को मिला है।

5. प्रायः यह पाया गया है कि उच्च जातियों के अत्याचार, उत्पीड़न के कारण भी हरिजन समुदाय के राजनीतिक विकल्प अत्यन्त सीमित नहीं रह गये हैं। मतदान के समय किसी विशेष दल या प्रत्याशी को मत देने की बाध्यता, आतंक और उत्पीड़न ने हरिजन समुदाय के आत्मविश्वास को क्षति पहुँचायी है।
6. राजनीतिक सहभागिता केवल एक या दो हरिजन जाति के कुछ विशेष परिवारों तक ही सीमित हो रहा है। सामान्य हरिजन समुदाय के लोग राजनैतिक संरक्षण का कोई विशेष लाभ नहीं उठा पाये हैं।

उपरोक्त अध्ययनों से यह स्पष्ट हो रहा है कि अनुसूचित जातियों के सामाजिक दशाओं में सुधार हो रहा है, परन्तु इनके परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के अन्तर्जातीय द्वन्द्व तथा द्वेष बढ़ रहे हैं।

भारतीय सामाजिक संरचना में चमार जाति समूह

स्वतन्त्रतोपरान्त हरिजनों के उत्थान हेतु अनेक महत्वपूर्ण प्रयत्न किये गये। इस अवधि में इन अस्पृश्यों की सामाजिक–आर्थिक दशाओं में परिवर्तन एवं सुधार हेतु संवैधानिक एवं वैधानिक सुरक्षाओं के माध्यम से तथा हरिजन कल्याण की अनेक योजनाओं द्वारा संयुक्त प्रयास किये गये हैं। इन विशिष्ट प्रयासों के अलावा देश में नगरीकरण, औद्योगीकरण, शिक्षा के प्रसार एवं संचार विस्तार इत्यादि की व्यापक प्रक्रियाओं से उत्पन्न परिवर्तन के सामान्य परिवेश के परिणामस्वरूप अनुसूचित जाति के लोग परिवर्तन की नवीन शक्तियों से परिचित एवं प्रभावित हुए हैं। अन्य अनुसूचित जाति समूहों की तुलना में परिमाणात्मक रूप से अधिक प्रभाव एवं आर्थिक रूप से अधिक बेहतर स्थिति में होने की वजह से चमार जाति समूह से यहाँ अपेक्षा की जाती है कि परितर्वन की इन नवीन शक्तियों के प्रति अधिक जागरूक एवं क्रियाशील होंगे।

भारतवर्ष के विभिन्न भागों में अनुसूचित जातियों किसी एक सुदृढ़ जनपुंज या समुदाय का रूप नहीं ले सकी है, वे सैकड़ों जातियों, उपजातियों में विभाजित है। वे लगभग ऐसे ग्यारह सौ समूहों में विभक्त हो पूरे भारत में फैली हुई है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में उनमें से कुछ समूह एक सामान्य पहचान एवं कभी–कभी सामान्य नाम को बनाये हुए है। अनुसूचित जातियों के प्रत्येक समूहों के अपने नाम, पृथक व्यवसाय, अपने नियम और बहुधा सामाजिक नियन्त्रण की अपनी व्यवस्था होती है। सामाजिक प्रस्थिति के मामले में ये समूह समान स्तर पर नहीं होते। वे सभी एक निश्चित और संस्तरणात्मक (उच्चता एवं निम्नता के क्रम में) जाति उप–इकाई के रूप में व्यवस्थित रहते हैं। उनके बीच अन्तःविवाह का व्यापक रूप से प्रचलन है (सच्चिदानन्द, 1977, 4)।

अनुसूचित जाति समूहों में चमार जाति संख्यात्मक रूप में वृहत्तम एवं स्थानिक रूपसे अत्यधिक सुविस्तृत समूह के रूप में मानी जाती है। उत्तर प्रदेश राज्य में अनुसूचित जातियों में उनकी संख्या सर्वाधिक है। राज्य की अनुसूचित जातियों में 56.5 प्रतिशत जनसंख्या चमार जाति की है। यह व्यावसायिक विविधता के सन्दर्भ में अनुसूचित जाति समूह से उनमें बाकी समस्या पायी जाती है।

चमार जाति समूह के सन्दर्भ में धुरिये ने लिखा है कि ''एक ही नाम वाला सबसे बड़ा समूह, जिसका फैलाव बहुत दूर–दूर तक था और जिसका प्रतिनिधित्व समस्त भारतीय आर्य–प्रदेशों में होता था तथा छिटपुट रूप से दास में भी था, चमार या चमारों का है। इसका नाम ही इसे चमड़े का कार्य करने वाला घोषित करता है। हम निश्चित रूप से यह जानते हैं कि न्यूनाक्षिक रूप से इसी नाम से चमार का शिल्प वैदिक काल में भी था, किन्तु हम इस विषय में बिल्कुल निश्चित नहीं हैं कि वह घृणा के कलंक से पूर्णरूप से मुक्त था या नहीं। चमड़े के कार्य से सम्बन्धित दो समूहों या जातियों के विषय में मनु बतलाते हैं और ये दोनों भी मिश्रित उद्‌गम के हैं। इनके नाम पर कारवार तथा विश्वान जैसे प्रचलित एवं अप्रचलित हैं। पहले को व्यावसायिक संज्ञा में चर्मकार या चमड़ा काटने वाला बतलाया गया है, जो आधुनिक संज्ञा चमार तथा चांभार अर्थात् भारतीय आर्य प्रदेश में चमड़े का कार्य करने वाली जाति का उद्‌गम है। विश्वान का व्यवसाय चमड़े का कार्य तथा चमड़े की वस्तुओं का व्यापार बतलाया गया है जिसका प्रतिनिधित्व उपरोक्त प्रदेशों में समकालीन समाज में मोची या मूची के द्वारा होता है। मनु के पाठ

के प्रकरण से यह स्पष्ट है कि यद्यपि उन समूहों से पहले तो इनके अनुमानित मिश्रित उद्‌गम के कारण तथा दूसरे गन्दी, मलीन तथा अपवित्र वस्तु का कार्य करने के कारण घृणा की जाति होगी, तथापि उन्हें गाँवों तथा कस्बों के बाहर रहने के लिए बाध्य नहीं किया जाता था (घुरिये, 1961:202–203)।

परम्परागत ग्रामीण अर्थव्यवस्था में चमार गाँव के नीच व्यक्तियों में से था, जिसे फसल के अवसर प्रथानुसार भाग प्राप्त करने का अधिकार था। यद्यपि गाँव के जीवन में उसका मुख्य योगदान उसके चमड़े तथा चमड़े के कार्य द्वारा होता था, तथापि एक कृषि श्रमिक के रूप में यह भाग महत्त्वहीन नहीं था। यह एक नाम से पुकारा जाने वाला विशालतम समूह था जिसका क्रम ब्राह्मण के पश्चात् ही आ जाता था। सन् 1901 में चमारों की संख्या एक करोड़ बारह लाख थी जबकि ब्राह्मणों की संख्या एक करोड़ उनचास लाख थी। चमारों की सबसे अधिक संख्या गाँवों में थी यानी सम्पूर्ण संख्या का 52.6 प्रतिशत था। न्यूनाधिक रूपसे या मूची नागरिक जाति है और इनकी पृथक्करण चमारों से सदा हीन ही किया जाता था, किन्तु जब कभी इनका पृथक्करण होता तो इन्हें उच्चतर प्रतिस्थिति प्रदान की जाती थी। सन् 1901 में केवल 10 लाख व्यक्तियों को इस नाम से रजिस्टर में दर्ज किया गया था। इस जाति द्वारा भोगी गई उच्च प्रतिस्थिति इस तथ्य से स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती है कि अनुसूचित जातियाँ तथा अनुसूचित जनजातियाँ आदेश संशोधित अधिनियम 1956 में गुजरात खण्ड के मोचियों को बम्बई राज्य की अनुसूचित जातियों की सूची से हटा दिया गया। (धुरिये, 1961:203)।

मैंने अपने पाठकों का ध्यान चमारों द्वारा संरक्षित सुधारों तथा सुधारक आन्दोलन की ओर आकृषित किया है। यहाँ पर मैं केवल इतना ही जोड़ना चाहता हूँ कि इस जाति समूह ने जो वैकल्पिक नाम धारण किये हैं उनमें न केवल राम वालिया, सतनामी तथा रेदासी ही हैं अपितु रोहित, रोहीदास, रविदास, सदास, रामनामी तथा ऋषि भी हैं। यद्यपि चमार की गणना शुद्र, अस्पर्श लोगों में इस तथ्य के कारण की जाती है कि मृत पशु का मांस उनके भोजन में सम्मिलित होता था, तथापि देश के कुछ भागों में चमार की सेवा किसी प्रकार के ब्राह्मण द्वारा हुआ करती थी। मृत पशु की खाल तथा चमड़े का कार्य दक्षिण की माहिमा तथा बक्किलियान जातियों का परम्परागत व्यवसाय रहा है। सब मिलाकर इनके सदस्यों की संख्या सन् 1901 में सवा लाख से ऊपर थी। माल लोगों का एक उपविभाग भी यह व्यवसाय करता था। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि वेदों में मूलधातु ''म्ला'' का अर्थ ''चमड़ा कमाना'' होता था (धुर्वे, 1961:203–204)।

मिल्टन सिंगर 1975:207–215) के अनुसार ''चमार शब्द की व्युत्पत्ति चर्मकार शब्दसे हुई है जिसका तात्पर्य पशुचमड़ा, पशु–धर्म एवं खाल का कार्य करने वाले व्यक्ति से होता है। चूँकि सम्पूर्ण भारत में पशु–शक्ति का प्रयोग कृषि कर्म में किया जाता है। अतः चमार अथवा उनके समरूप जाति समूह के व्यक्ति देश के हर भाग में पाये जाते हैं। परन्तु इसके अलावा अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वे कृषि श्रमिकों के रूप में कार्य करते हैं। उनकी जनसंख्या का अल्पांश ही अपने परम्परागत व्यवसाय से आय अर्जित करते हैं। जबकि अधिकांश लोग कृषक मजदूर अथवा नगरीय श्रमिक के रूप में जीवन यापन करते हैं।

(इल्स–1974:207) के अनुसार :– प्रायः गंगा मैदान के आर्पन व्यवसाय एवं स्थाई हलवाही कृषि के प्रारम्भ काल में चमारों की अधिकांश संख्या कृषि सम्बन्ध एवं गृह सेवक के कार्य में लगी हुई थी यह परम्परात्मक कर्मचारी, दीवा–मजदूर एवं किरायेदार और दुर्लभ रूप से स्वामीय कृषक रहे हैं।

सिंह (1952:157) के अनुसार चमार नाना प्रकार के कार्य में लगे पाये जाते थे। उनकी स्त्रियाँ उच्च जाति परिवारों में दाई के रूप में कार्य करती हैं।''

क्रूक (1968:170) के अनुसार ''जन्मजात रूप से ही वे घरेलू नौकर या दास हैं।''

सिंगर (1975:326) के अनुसार ''मरे हुए पशुओं के ढोने के अतिरिक्त पशुचरम एवं खाल से चमड़े का निर्माण करते हैं। परन्तु मौलिक व्यवसाय जो भी हो यें आधारभूत रूप से कृषि से भी जुड़े हुए हैं। व्यवहारिक जीवन के सहारे के लिये जमीन में पाँच वर्षों का रोपण उनके कृषि घनिष्ट सम्बन्ध को इंगित करता है। प्रकाश के त्यौहार, दीपावली पर वे वापू, जिससे वे पशु, चरम पर से बालों को हिलते हैं, पशु पूजा करते हैं।

क्रूक (1974:421) के अनुसार ''आज भी वे जादूगर के रूप में सफेद एवं कालू जादू के कार्य में लगे हुए हैं।''

कृषि एवं सम्बन्धित व्यवसायों में जुड़े होने की वजह से चमार जाति समूह वृहद् ग्रामीण समुदायों का अभिन्न अंग बन गया है। अज्ञात युगों में भारतीय ग्रामीण जीवन के साथ उनका घनिष्ठ एवं एतिहासिक पूर्ण सम्बन्ध रहा है।

बिजेज (1920:17) के अनुसार ''इस प्रकार के ठाकुर (राजपूत) एवं ब्राह्मणों से बहुत महत्वपूर्ण पूरजन बन चुके हैं और ठाकुर जजमानों से आर्थिक रूप से जुड़े हुए हैं।

क्रून 1950:459 – ''प्रत्येक गाँव में चमारों को निश्चित जन्मजात अधिकार प्राप्त हैं जिन्हें जजमान या गोकर्मो के नाम से पुकारते हैं।''

सिंह (1952:162) – वे अपने जजमाने से पशुचर्म सेती की विशेष सुविधा (अधिकार) ईंधन, घास, भेंट तथा अनाज पाते थे। अनुसूचित जातियों के एवं सामान्य रूप से अन्य जातियों के संस्मरण में चमार जाति समूह को निम्न स्तर प्राप्त है।

सिंह (1952:178) के अनुसार व्यवसायिक संरचना में चर्मकार होने की वजह से तथा क्रूक 1968:469 के अनुसार खाने की आदतों (प्रथा–शुअर मांस) तथा दूजे के मांस का आहार करना की वजह से चमारों को समाज में निम्न सामाजिक परिस्थिति प्राप्त हुई है। परिणामतः वे उच्च जातियों तथा बस्तियों से दूर रहते थे। परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि इन सब बातों के बावजूद वे समुदाय एवं जजमानी व्यवसाय के विभिन्न अंग हैं इस सन्दर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सामान्य रूपसे अनुसूचित जातियों की अत्यधिक जनसंख्या लगभग 66.0 प्रतिशत तथा उनमें की चमार जाति समूह की सर्वाधिक जनसंख्या गाँव में निवास करती है।

अतएव समाज वैज्ञानिक दृष्टिकोण में यह आवश्यक है कि ग्रामीण समाज में इनकी बदली हुई सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक एवं व्यवसायिक दशाओं का व्यवस्थित रूप में अध्ययन किया जाये। अतएव चमारों की परिमाणात्मक शक्ति सुविस्तार एवं अनुसूचित जातियों में उनके स्थान को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन में इस जाति समूह का अध्ययन कर उनकी सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक एवं व्यवसायिक स्थिति एवं गतिशीलता से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का समाज वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में अन्वेषण करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में आशा की जाती है कि यह न केवल चमार जाति समूह के सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक एवं व्यवसायिक जीवन के विभिन्न पक्षों में होने वाले परिवर्तन को उजागर करेगा वरन् इससे प्राप्त निष्कर्षों के द्वारा सामान्य रूप में अनुसूचित जातियों में होने वाले परिवर्तनों के वृहद् संख्यों को समझने में मदद मिलेगी इसके अलावा अध्ययन के द्वारा भारतीय समाज में सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक एवं व्यवसायिक रूप से निम्न स्थिति प्राप्त समुदाय की गतिशीलता, आधुनिकीकरण में आने वाली विसंगतियों, कमियों एवं त्रुटियों पर भी प्रकाश पड़ेगा।

सार ग्रंथ सूची

Abbusayula, Y.B.	Scheduled Cast Elite : A Study of Scheduled Caste Elite in Andhra Pradesh, Pragati, Hyderabad 1978
Agarwal, P.C.	Caste Religion and Power, Shri Ram Centre for Industrial Relation, New Delhi, 1971
Aggarwal, C.B.	The Harijans in Rebellion Bombay Tara Porewala Sons & Co. 1934
Ali Khan Mumtaz	Identity Formation and Self Identity Among Harijan Elites
Ambedkar, B.R.	Who was Shudras ?
Ambedkar, B.R.	"The Untouchables, Who were they ? and why then became unthouchable ?" Amrit Book Company, Delhi, 1948.
Ambedkar, B.R.	"Who were the Shudras ?" Thakur and Co. Limited, Bombay, 1946.
Beteille Andre	Cast, Class and Power Changing Patterns of Stratification in a Tanjore Village 1965.
Beteille Andre	Castes : Old and New, Essays in Social Structure and Social Stratification 1969.
Bhardwaj, A.N.	Problems of Scheduled Castes and Scheduled Tribes in India, Light and Life Publishers, New Delhi, 1979
Blunt, E.A.H.	"The Caste System in Northern India", S. Chand & Co., Delhi, 1969.
Chatterjee, S.K.	The Scheduled Caste of Indian Peoples of India, Vol.-IV
Desai, A.R.	Social Background of Indian Nationalism, Popular Prakashan, Bombay, (4th ed), P. 263, 1966
Desia, I.P.	Caste, Caste Conflict & Reservation
Dr. Sagar Kshir	Untouchability in India
Ghurye, G.S.	Cast, Class and Occupation – Popular Book Depot, 4th Edition, 1961
Sharma, K.L.	Social Stratification of Mobility
Srinivas, M.N.	The Dominant Cast and other Essays
Valmiki Omprakash	Joothan-A Dalit's Life. Translated by Arun Prabha Mukherjee, Kolkata : Samya, 2003
Venkateswar, D.	Harijan Upper Class Conflicts